बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:23-12-22

कठिन लक्ष्य

संपादकीय

संयुक्त राष्ट्र जैव विविधता सम्मेलन के पक्षकारों के 15वें सम्मेलन (कॉप 15) का आयोजन पिछले दिनों कनाडा के मॉन्ट्रियल में किया गया। इस आयोजन में जो सहमति बनी वह कागजों पर तो काफी प्रभावशाली नजर आती है लेकिन उसका क्रियान्वयन काफी कठिन साबित हो सकता है। हालांकि इसकी फाइनैंसिंग के लिए एक व्यापक व्यवस्था बनाने की बात कही गई लेकिन उसके बावजूद यह काम मुश्किल हो सकता है। यह ऐतिहासिक समझौता पेरिस जलवायु संधि के तर्ज पर किया गया और इसमें ऐसे लक्ष्य तय किए गए जो 2030 तक जमीनी, आंतरिक जलीय और तटीय तथा समुद्री पारिस्थितिकी को हुए 30 फीसदी नुकसान की भरपाई कर उसे बहाल करने की बात कहते हैं और साथ ही अहम जैव विविधता को होने वाले भावी नुकसान को रोकने का लक्ष्य तय करते हैं। यह लक्ष्य आसान नहीं है, खासकर यह देखते हुए कि फिलहाल केवल 17 फीसदी जमीनी और 10 फीसदी से भी कम समुद्री क्षेत्रों का बचाव किया जा रहा है। दुनिया के महत्त्वपूर्ण जैव संसाधन पूरी तरह बचाव से रहित हैं।

नए वैश्विक जैव विविधता प्रारूप (जीबीएफ) में यह परिकल्पना की गई है कि 2030 तक सभी सार्वजनिक एवं निजी स्रोतों से न्यूनतम 200 अरब डॉलर की राशि प्रति वर्ष जुटाई जाएगी और इसकी सहायता से पृथ्वी की पारिस्थितिकी को जरूरी सुविधाएं मुहैया कराई जाएंगी। यह भी अति महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य नजर आता है क्योंकि विकसित देश 2009 में जलवायु परिवर्तन पर नियंत्रण के लिए उत्सर्जन कम करने के क्रम में सालाना 100 अरब डॉलर का फंड जुटाने पर सहमत हुए थे लेकिन इस मामले में कोई सकारात्मक अनुभव नहीं रहा है। समग्र रूप से देखा जाए तो जीबीएफ में 23 लक्ष्य तय किए गए हैं जिनमें से अनेक मात्रात्मक हैं जिससे उनकी प्रगति को आंकना आसान है। जैव विविधता को नुकसान पहुंचाने वाले उद्योगों की सब्सिडी में सालाना 500 अरब डॉलर तक की कमी करना और कीटनाशकों तथा हानिकारक रसायनों के इस्तेमाल को आधा करना शामिल है। इसके अलावा इसमें वैश्विक स्तर पर होने वाली खाद्य पदार्थों की बरबादी में 50 फीसदी की कमी और जरूरत से अधिक खपत तथा कचरा उत्पादन में अहम कटौती की बात कही गई है। यह इस बात की भी मांग करता है कि बड़े कारोबारी और निजी निवेशक नियमित रूप से अपने उन कदमों का खुलासा करें जो प्रकृति को प्रभावित करते हैं और उसका संरक्षण करते हैं।

इसमें दो राय नहीं है कि इन कदमों की जरूरत है और इससे भी अधिक ये ऐसे कठिन काम हैं जिनके बारे में कहना आसान है लेकिन करना कठिन। उनका असली महत्त्व तभी आंका जा सकता है जब उन्हें पृथ्वी की जैव विविधता की मौजूदा कमजोर दशा के परिदृश्य में देखा जाए। वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर द्वारा जारी 2022 की लिविंग प्लैनेट रिपोर्ट में हमारी जैव विविधता की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। इसके मुताबिक करीब 34,000 पौधे और 5,200 पशुओं की प्रजातियां नष्ट होने के कगार पर हैं। इसमें पक्षियों की तमाम किस्में शामिल हैं। बुरी बात यह है कि वन्य जीवों की आबादी 1970 से अब तक 69 फीसदी घटी है। इसके लिए उनके प्राकृतिक आवास नष्ट होना, खतरनाक गतिविधियां, प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन आदि प्रमुख वजह हैं।

भारत इस तथ्य से राहत तलाश सकता है कि लक्ष्यों को वैश्विक स्तर पर लागू करने का उसका सुझाव मान लिया गया। विभिन्न देशों को यह स्वतंत्रता दी गई है कि वे इन्हें अपने हालात, प्राथमिकता और क्षमता के अनुसार अपनाएं। यह बात भी ध्यान देने लायक है कि भारत कुछ अन्य विकासशील देशों तथा अपेक्षाकृत अमीर देश जापान के साथ मिलकर मत्स्यपालन तथा कृषि सब्सिडी को बाहर रखने में कामयाब रहा। इससे भी अहम बात यह है कि वनों में रहने वाले लोगों के जेनेटिक संसाधनों के इस्तेमाल से होने वाले मौद्रिक और गैर मौद्रिक लाभ की साझेदारी तथा जेनेटिक संसाधनों से संबद्ध पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण को जीबीएफ का हिस्सा बनाया गया है। बहरहाल, नए जैवविविधता समझौते के हानि-लाभ से परे इस दिशा में प्रगति के लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति अहम है। वरना पृथ्वी का प्राकृतिक संतुलन बिगड़ेगा और हम गहन संकट में फंस जाएंगे।

Date:23-12-22

फंसा कर्ज और ऋणशोधन अक्षमता एवं दिवालिया संहिता

देवाशिष बसु, (लेखक मनीलाइफ डॉट इन के संपादक हैं)

केंद्रीय वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने पिछले सप्ताह राज्य सभा को बताया कि अधिसूचित वाणिज्यिक बैंकों ने बीते पांच वर्ष में 10 लाख करोड़ रुपये मूल्य का फंसा हुआ कर्ज बट्टे खाते में डाला और इसमें से केवल 13 फीसदी की वसूली हो सकी। वर्ष 2016 में ऋणशोधन अक्षमता एवं दिवालिया संहिता (आईबीसी) के चलन में आने के बाद से सितंबर माह तक आईबीसी के माध्यम से फंसे हुए कर्ज की वसूली 30.8 फीसदी रही। जिन लोगों ने फंसे हुए कर्ज के स्रोत और उनकी वसूली में आईबीसी की भूमिका पर केंद्रित मेरे पिछले आलेख पढ़े होंगे उन्हें इस बात से कोई आश्चर्य नहीं होगा।

फंसे हुए कर्ज और आईबीसी रिकवरी प्रक्रिया के ये दोनों मुद्दे भले ही अलग अलग नजर आते हैं लेकिन ये दोनों आपस में संबंध रखते हैं। ऐसा इसलिए कि इनमें से पहला दूसरे का परिणाम है। इस तस्वीर पर एक बार फिर से नजर डालते हैं। फंसे हुए कर्ज का ज्यादातर हिस्सा सरकारी बैंकों की देन है। कई ऋण ऐसे होते हैं कि उनका फंसे ऋण में परिवर्तित होना तय रहता है। मंजूरी के चरण से ही भ्रष्टाचार अपनी पैठ बना लेता है। एक बार जब मामला आईबीसी के पास पहुंचता है तो वसूली के लिए कोई संपत्ति बचती ही नहीं। मैंने सरकारी बैंकों में सुधार के हवाले से 2014 से ही इस बात को बार-बार दोहराया है। मैंने आईबीसी की वास्तविक क्षमताओं के बारे में भी बात की है। अब आंकड़ों ने भी इस नजरिये की पुष्टि कर दी है।

भ्रष्टाचार और फंसा हुआ कर्ज: चकित करने वाली बात यह है कि फंसे हुए कर्ज के प्रबंधन में लगे, उस पर टिप्पणी करने वाले और इस भारी-भरकम संकट से निपटने में लगे लोगों ने कभी यह स्वीकार नहीं किया कि फंसे कर्ज की इकलौती बड़ी वजह उनके ठीक सामने मौजूद है और वह है ऋण मंजूरी की प्रक्रिया में भ्रष्टाचार। लेकिन बैंक अधिकारियों को जिम्मेदार ठहराने का कभी कोई प्रयास नहीं किया गया। इसके विपरीत भारतीय रिजर्व बैंक, वित्त मंत्रालय और बैंक अधिकारियों सभी ने फंसे हुए कर्ज के लिए दो बाहरी कारकों को वजह बताया : कारोबारों की नाकामी और कमजोर दिवालिया कानून। जबकि हमेशा बैंकर ही इस तथ्य को सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार रहे हैं कि तथाकथित दिवालिया प्रवर्तक जनता के पैसे से अमीर हुए।

रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर रघुराम राजन ने 2016 के मध्य में सरकारी बैंकों के बारे में बात करते हुए फंसे हुए कर्ज के लिए बैंकरों के भेड़ चाल वाले सोच को वजह बताया था। उन्होंने कहा कि 2006 से 2008 के दौरान बैंकर कर्ज देने के लिए अपनी चेक बुक लेकर कारोबारियों के पीछे भाग रहे थे। एक छोटी सी घटना के सहारे, डॉ राजन ने समझाया, 'इस फंसे हुए कर्ज में से ढेर सारा' यानी सरकारी बैंकों का लाखों करोड़ रुपये का कर्ज बैंकरों और कारोबारियों के बीच सांठगांठ की देन था। सरकारी बैंकों के कर्मचारी ऐसे सरकारी अधिकारी हैं जिन्हें कर्ज देने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। व्यावहारिक रूप से देखा जाए तो वे संदिग्ध प्रस्ताव को ठुकराने के लिए सबसे बेहतर स्थिति में होते हैं।

आखिर वे कौन से प्रलोभन होंगे जिनकी बदौलत ये अधिकारी प्रवर्तकों के पीछे अपनी चेकबुक लिए घूम रहे थे? इस सवाल का जवाब एकदम जाहिर है। उनके पास अपनी तरह के प्रोत्साहन थे। जब 2010 की मंदी के बाद सरकारी बैंक कर्ज नहीं दे रहे थे तब डॉक्टर राजन ने उनका सार्वजनिक रूप से बचाव किया था और कहा था कि बैंकर सतर्कता जांच से बेहद डरे हुए हैं इसलिए निर्णय नहीं ले पा रहे हैं। उस वक्त भी मैंने कहा था कि राजन ने इस तथ्य की अनदेखी कर दी कि ऐसा बहुत कम हुआ है जब किसी बैंकर को रेहन संबंधी गलती के लिए दोषी ठहराया गया हो। जबकि सरकारी बैंकों में यहां आम है। खास तौर पर इसलिए कि सरकारी बैंक हमेशा परिसंपत्तियों पर कर्ज देते हैं ना की नकदी प्रवाह पर।

कमजोर वसूली और दिवालिया कानून: आज भले ही ज्यादातर लोग भूल चुके हैं लेकिन कुछ वर्ष पहले तक खराब वसूली के लिए बैंकरों का एक सीधा साधा बहाना था दिवालिया कानून। भारतीय स्टेट बैंक की पूर्व चेयरमैन अरुंधती भट्टाचार्य ने एक बार कहा था, 'हमें नियामकीय व्यवस्था में बदलाव और डिफॉल्टरों के लिए कठोर नियमों की आवश्यकता है। साथ ही हमें एक व्यवस्थित दिवालिया कानून की भी जरूरत है ताकि फंसे हुए कर्ज से सही तरीके से निपटा जा सके।' तथ्य तो यह है कि बीते तीन दशकों में नीति निर्माताओं ने फंसे हुए कर्ज से निपटने के लिए आधा दर्जन उपाय किए। इनमें से प्रत्येक उपाय पिछले की तुलना में कठोर था। साथ ही दिवालिया कानून कब लागू होता है जब कर्ज फंसे हुए कर्ज में तब्दील हो जाता है, ना कि पहले। अगर कर्ज को जानबूझकर इस तरह तैयार किया जाए कि खराब बैंकरों के प्रोत्साहन के चलते उसे फंसे हुए कर्ज में तब्दील होना ही हो तो भला दिवालिया कानून क्या करेंगे?

निश्चित रूप से आईबीसी ने केवल यह दिखाया है कि सरकारी बैंकों में भ्रष्ट बैंकिंग व्यवहार कितना व्यापक और गहरा था। ऋण के बारे में जरा भी जानकारी रखने वाला कोई भी व्यक्ति जानता है कि अगर आपको वास्तव में ऋण चाहिए तो बैंकर इसके लिए तमाम कठिन शर्तें बताएंगे। आपको अनावश्यक बीमा योजनाएं तक खरीदने के लिए विवश किया जाएगा। बिना व्यक्तिगत गारंटी के आपको ऋण नहीं मिल सकता और कुछ मामलों में तो तीसरे पक्ष की गारंटी भी चाहिए। इसके बावजूद आलोक इंडस्ट्रीज, भूषण स्टील, भूषण पावर, मोनेट इस्पात, वीडियोकॉन, एस्सार समूह, शिवा

इंडस्ट्रीज और ऐसे ही असंख्य मामलों में बैंकों को लगभग पूरा कर्ज बट्टे खाते में डालना पड़ा। किसी बैंकर से पूछा नहीं गया कि उसने गारंटी के लिए क्या किया? साफ जाहिर होता है कि फंसा हुआ कर्ज गलत वाणिज्यिक निर्णयों का नतीजा नहीं है जैसा कि डॉक्टर राजन और अन्य लोगों ने बैंकों के बचाव में कहा था। उन्हें तैयार है इस तरह किया गया था कि वे नाकाम हों और सरकारी बैंकों का धन लुटे। यही कारण है कि बैंक फंसे कर्ज में से केवल 13 प्रतिशत की वसूली कर पाए जबकि आईबीसी स्तर पर यह केवल 30 फीसदी रहा।

क्या इन परिस्थितियों में बदलाव आएगा? इस सरकार के कार्यकाल में एक अपवाद को छोड़ दिया जाए तो राजनीति से प्रेरित ऋण की घटनाएं लगभग नहीं नजर आतीं। इसलिए संभव है कि सरकारी बैंकों का फंसा हुआ ऋण काफी कम नजर आए। जब तक सरकारी बैंकों का निजीकरण नहीं होगा नए सिरे से फंसे कर्ज का खतरा बरकरार रहेगा, खासकर किसी अन्य राजनीतिक सत्ता के अधीन। दूसरी ओर, जैसा कि संदेह था आईबीसी की प्रक्रिया जल्दी ही जटिलताओं की शिकार हो गई, अंतहीन संशोधन, परिपत्र, तदर्थ बदलाव तथा अतीत से प्रभावी निर्णय इसका उदाहरण हैं। जैसा कि मैं कई बार कह चुका हूं, दिवालिया प्रक्रिया को बाजार को स्वच्छ करने वाली प्रणाली से संचालित करने की आवश्यकता है। लेकिन इसके लिए सोच विचार की पूरी प्रक्रिया को बदलना आवश्यक है जो आसान नहीं है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:23-12-22

क्रिप्टो पर शक

संपादकीय

भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर शक्तिकांत दास ने फिर चेताया है कि अगला आर्थिक संकट क्रिप्टोकरेंसी की वजह से पैदा होगा। हालांकि, यह आशंका नई नहीं है। शक्तिकांत दास हमेशा से ही क्रिप्टोकरेंसी के मुखर विरोधी रहे हैं। अनेक मौकों पर उन्होंने इशारा किया है कि भारत की वित्तीय स्थिरता के लिए डिजिटल मुद्रा संकट पैदा कर सकती है। यही कारण है कि भारत में केंद्रीय बैंक ने क्रिप्टो क्षेत्र के अनुकूल माहौल नहीं बनाया है। क्रिप्टो के प्रति सख्त रुख की वजह से इसका विस्तार भारत में ज्यादा तेजी के साथ नहीं हो सका है। दुनिया के अनेक देशों में क्रिप्टो पर लोगों का विश्वास नहीं जमा है और उस पर निवेश करने

वालों की संख्या भी कम है। इसमें खास बात यह है कि जब केंद्रीय बैंक ने एक आधिकारिक डिजिटल मुद्रा की ओर कदम बढ़ाया है, तब भी शक्तिकांत दास के विचार में बदलाव नहीं आया है। 'बीएफएसआई इनसाइट समिट 2022' में बोलते हुए उन्होंने कहा है कि क्रिप्टोकरेंसी का कोई अंतर्निहित मूल्य नहीं है और यह भारत की वित्तीय स्थिरता के लिए भारी जोखिम पैदा करता है।

वाकई, किसी भी वस्तु या मुद्रा का मूल्य तय करने का काम बाजार करता है और एक हाथ से दूसरे हाथ में जाते हुए मूल्य का स्पष्ट होना जरूरी है। यह अभी सवाल है कि क्रिप्टो का मूल्य क्या है और वह कैसे तय होगा? लोग धन खर्च करके क्रिप्टो खरीदते हैं और क्रिप्टो की कीमत पिछले वर्ष में बहुत बढ़ी है, लेकिन क्या यह बढ़त जारी रहेगी? क्या विश्व स्तर पर गैर-मान्यता प्राप्त इस मुद्रा का संभावित मूल्य बना रहेगा? यह मुद्रा डूबी, तो कौन देश या कौन सा केंद्रीय बैंक इसकी जिम्मेदारी लेगा? अगर क्रिप्टो एक उत्पाद है, तो उसे बनाने वाली कंपनी क्या इसे किसी दिन वापस ले सकती है या क्या वह कंपनी बंद हो सकती है? कंपनी बंद हुई, तब क्या होगा? आरबीआई गवर्नर इसे 100 प्रतिशत सट्टा गतिविधि मानते हैं, तो कोई आश्चर्य नहीं। उन्होंने क्रिप्टोकरेंसी के एक दिग्गज खिलाड़ी एफटीएक्स का हवाला दिया है। ध्यान रहे, हाल ही में क्रिप्टोकरेंसी का एक एक्सचेंज एफटीएक्स तबाह हुआ है। एक झटके से निवेशकों के चालीस अरब डॉलर का सफाया हो गया है। एफटीएक्स के 30 वर्षीय मालिक सेमुअल बैंकमैन फ्राइड पर अरबों डॉलर की चोरी का आरोप लगा है। अमेरिका इसे अपने इतिहास की सबसे बड़ी वित्तीय धोखाधड़ी में से एक मान रहा है। सेमुअल को गिरफ्तार कर लिया गया है और बहामास से अमेरिका लाया जाना है। इस प्रकरण का उदाहरण देते हुए शक्तिकांत दास ने कहा है कि एफटीएक्स प्रकरण के बाद मुझे नहीं लगता कि हमें कुछ और कहने की जरूरत है।

यह सवाल अभी भी बरकरार है कि क्रिप्टोकरेंसी से क्या सार्वजनिक फायदा होता है? तो क्या इन मुद्राओं को प्रतिबंधित कर देना चाहिए? इन मुद्राओं से खतरा है, तो रिजर्व बैंक भी क्यों ऐसी ही मुद्रा के विस्तार की ओर बढ़ रहा है? वस्तुस्थिति यह है कि सरकार ने क्रिप्टो को मान्यता तो नहीं दी है, लेकिन इस पर वह 30 प्रतिशत विशेष कर और जीएसटी अलग से वसूलती है। अगर ज्यादा जोखिम है, तो क्रिप्टो को अनियमित ढंग से भी क्यों चलने दिया जाए? इसके अलावा भारत में जिस ई-रुपये की शुरुआत हुई है, उसे वैध व तार्किक ढंग से चलाना होगा। क्रिप्टो से यह डिजिटल मुद्रा अलग और फायदेमंद रहे, किसी निवेशक को नुकसान न हो, पूरे विश्वास के साथ इससे लेन-देन हो, तो हमारा रिजर्व बैंक एक मिसाल पेश कर पाएगा।

Date:23-12-22

पहले तीस फीसदी दुनिया ही बचा लें

देविंदर शर्मा, (कृषि विशेषज्ञ)

संयुक्त राष्ट्र जैव विविधता सम्मलेन (कॉप-15) का समापन जिस समझौते के साथ हुआ है, वह मील का पत्थर साबित हो सकता है। इस 'फ्रेमवर्क' के तहत कुल 23 लक्ष्य तय किए गए हैं, जो अल्पावधि के लिए हैं। जैसे, साल 2030 तक दुनिया की कम से कम 30 फीसदी जमीन, तटीय इलाकों और समुद्री क्षेत्रों का संरक्षण करना; फिलहाल 17 फीसदी भूमि

और आठ प्रतिशत समुद्री क्षेत्रों का संरक्षण हो रहा है, 30 प्रतिशत पारिस्थितिकी तंत्र को पुनर्जीवित करना, जैव विविधता के लिहाज से अहम स्थानों पर नुकसान को शून्य करना आदि। ये तमाम उद्देश्य सुरक्षित भविष्य की मशाल हैं।

इसकी हमें सख्त जरूरत थी। दुनिया अभी जिस दौर से गुजर रही है, उसे 'छठा सामूहिक विनाश' कहा जा रहा है। इसका मतलब है कि आने वाले दिनों में जीव-जंतुओं की 10 लाख प्रजातियां लुप्त होने वाली हैं। इससे पहले सामूहिक विनाश तब हुआ था, जब धरती से डायनासोर का अंत हुआ था। जाहिर है, जब हमारे आसपास जैव विविधता की इतनी बड़ी दुनिया खत्म होगी, तो मानव अस्तित्व पर स्वाभाविक खतरा पैदा होगा। कॉप-15 के फ्रेमवर्क में लक्ष्य ही नहीं तय किए गए हैं, बल्कि पहली बार उनकी निगरानी की व्यवस्था भी की गई है। साथ ही, जैव विविधता से संबंधित फंडिंग के लिए सार्वजनिक व निजी स्रोतों से हर साल 200 अरब डॉलर जुटाने और विकासशील देशों को सालाना 30 अरब डॉलर देने की बात भी कही गई है। मिट्टी और समंदर ही नहीं, इको-सिस्टम को बचाने की अनिवार्यता भी इसमें हैं। चूंकि यह समझौता लक्ष्य-केंद्रित है, इसलिए इसकी तुलना 2015 के पेरिस समझौते से भी हो रही है, जिसमें पूर्व-औद्योगिक युग से दुनिया का तापमान 1.5 डिग्री सेल्सियस तक लाने का लक्ष्य तय किया गया है। जिस तरह से जलवायु परिवर्तन से बचाव को लेकर पहली बार एक ठोस लक्ष्य पेरिस में तय किया गया था, उसी तरह की संजीदगी इस बार कनाडा में कॉप-15 की बैठक में जैव विविधता को लेकर दिखी है।

अच्छी बात यह भी है कि जैव विविधता सम्मेलन में हर साल दुनिया भर की सरकारों द्वारा दी जा रही 1.8 ट्रिलियन (18 खरब) डॉलर की सब्सिडी को सालाना 500 अरब डॉलर की दर से कम करने पर भी सहमति बनी है। इसका खाद्य और कृषि पर सीधा असर होगा। यह पर्यावरण-अनुकूल खेती की राह प्रशस्त कर सकती है। यानी ऐसी खेती संभव हो सकेगी, जिससे मिट्टी की पोषकता तो अक्षुण्ण रहेगी ही, इंसानी सेहत भी बनी रहेगी। इसके लिए समझौते में 2030 तक कीटनाशकों के इस्तेमाल को 50 फीसदी घटाने की अनिवार्यता रखी गई है। इस पर कुछ देश सहमत नहीं हैं। सवाल यह है कि कुछ सरकारें आखिर क्यों कीटनाशकों या खाद कंपनियों की लॉबी की गिरफ्त में दिखती हैं? अगर वे इनको दरकिनार नहीं करेंगी, तो सुरक्षित खाद्य तंत्र की ओर हम उतनी तेजी से नहीं बढ़ सकेंगे, जितनी अपेक्षा की जा रही है।

अपने यहां भी हमने देखा है कि जब-जब कीटनाशकों पर सवाल उठा है, सरकारें उसके बचाव में उतर आती हैं। केरल में ही काजू के बागानों में एंडोसल्फान कीटनाशक का धड़ल्ले से इस्तेमाल होता था, और जब ग्रामीणों ने बीमारियों की वजह से इसका विरोध किया, तो केंद्र सरकार इसका बचाव करने लगी थी। यहां तक कि स्टॉकहोम कन्वेंशन में जब इस पर प्रतिबंध लगाया गया, तब भी हमारी सरकार नहीं चाहती थी कि इसका उपयोग बंद हो। हालांकि, बाद में इसका इस्तेमाल बंद किया गया। अब अच्छी बात यह है कि हमारे प्रधानमंत्री प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने की वकालत करते हैं, लिहाजा उम्मीद कर सकते हैं कि सब्सिडी न देकर जो रकम बचाई जाएगी (क्योंकि कृषि में मिलने वाली सब्सिडी का बड़ा हिस्सा कीटनाशक कंपनियों के पास जाता है), उसका इस्तेमाल टिकाऊ खेती के लिए होगा।

जैव विविधता के लिहाज से भारत का दुनिया में तीसरा सबसे बड़ा स्थान है। यहां काफी ज्यादा वैविध्य है। मगर सच यह भी है कि बीते कुछ वर्षों में विकास के नाम पर पर्यावरण की बलि ली गई है। छत्तीसगढ़ में ही कोयला खनन के नाम पर हजारों पेड़ काटने की बात चल रही है। अंडमान में विकास के नाम पर आठ लाख पेड़ काटे जाएंगे, जिसकी पूर्ति गुरुग्राम (हरियाणा) में वृक्षारोपण करके की जाएगी। क्या यह सही नीति है? हमें अपनी पारिस्थितिकी की कीमत पर ऐसे कथित विकास-कार्यों से बचना चाहिए। हमें यह तय करना ही होगा कि ऐसे कार्यों से हम पर्यावरण को जितना नुकसान पहुंचा रहे हैं, उसकी कीमत क्या है? कहीं यह तो नहीं कि खनन से जितना फायदा हमें मिलेगा, उससे कहीं कीमती

पारिस्थितिकी को हम नष्ट कर रहे हैं? इसीलिए इको-सिस्टम के मूल्य-निर्धारण की व्यवस्था होनी चाहिए। हरित क्रांति के बाद ही, जिस तरह से एकल कृषि को बढ़ावा मिला है, उसने हमारी जैव विविधता को काफी चोट पहुंचाई है। आज कपास की होने वाली 95 फीसदी खेती बीटी कॉटन की हो रही है, जिस कारण कपास की अन्य प्रजातियां किसानों के लिए अनुपलब्ध हो गई हैं। जीएम फसल से आगे भी एकल कृषि को ही बढ़ावा मिलेगा। साफ है, हमें समग्रता में अपनी नीतियां बनानी होंगी। विकास नीतियों में प्रकृति व पर्यावरण को सबसे ऊपर रखना होगा।

यहीं पर कॉप-15 बैठक में लक्ष्यों की निगरानी की बात महत्वपूर्ण बन जाती है। इसमें वैश्विक व्यवस्था के तहत न सिर्फ वादा करना होगा, बल्कि उसे पूरा करने की दिशा में काम भी करना होगा। इसमें स्थानीय प्रशासन भी जवाबदेह बन गए हैं, यानी 'ग्लोबल' से 'लोकल' तक एक कड़ी बन गई है। यह धारणा अब बदलनी होगी कि हमें पेड़ नहीं, विकास चाहिए। विकास का मतलब प्रकृति को खत्म करना नहीं, बल्कि पारिस्थितिकी से संतुलन बनाते हुए तरक्की करना होना चाहिए। पर्यावरण पर गौर किए बिना किसी देश की अर्थव्यवस्था आगे नहीं बढ़ सकती। हमें जब यह पता है कि दुनिया भर में ग्रीनहाउस गैसों का 34 फीसदी हिस्सा कृषि से उत्सर्जित हो रहा है, तो हमें सुरक्षित खेती की तरफ बढ़ना ही होगा। जैव विविधता बचेगी, तभी जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का भी हम समाधान कर सकेंगे।